THE TIMES OF INDIA

Date: 20-04-18

Iron verdict

SC provides judicial closure to Judge Loya's death, but political slugfest will continue

Editorial

Dismissing a set of PILs demanding a court-monitored SIT probe into the death of Judge BH Loya on December 1, 2014, the Supreme Court was stinging in its criticism of the petitioners – accusing them of scandalising the judiciary and equating their actions with contempt of court. Supreme Court found no reason to disbelieve the statements of four judicial officers present with Loya before his death. It also slammed the political intentions behind the PILs.

SC said these days an avalanche of PILs are being filed to settle business and political scores and the judiciary is unnecessarily made to spend precious time looking into such PILs which leads to delay in giving justice in other cases. But as with the 2G scam, PILs have made a critical push for accountability. They have produced important social goods like the Ganga cleanup and Vishaka guidelines. It is for the courts to separate the wheat from chaff.

While the Supreme Court judgment spells judicial closure for the matter, the polarised views on Loya's death are continuing to power on political slugfests. Plus, the case has been heard at a time when differences within the collegium have gone public in an unprecedented way. In January four seniormost judges of the Supreme Court held a public conference over the alleged arbitrary functioning by Chief Justice of India Dipak Misra. Reportedly one bone of contention even there was the bench assigned to hear petitions demanding the probe into Loya's death, which was subsequently changed. These internal disagreements within the collegium as also associated questions about the independence of the judiciary remain quite alive, requiring redress. This is very important for improving the delivery of justice as also public confidence in it.

THE ECONOMIC TIMES

Date: 20-04-18

Unenviable Status for NIA Neutrality

Editorial

The National Investigation Agency's prosecution of the accused in the 2007 Mecca Masjid blast case has been foiled. The accused have been let off for want of evidence.Other NIA cases of terror attacks, in which the accused belonged to right-wing Hindu outfits, those of the 2007 Samjhauta Express blasts and the 2008 Malegaon blasts, too, appear to be heading for the same fate, with witnesses turning hostile one after another and the accused disowning their own testimony earlier taken on board as evidence. Two imperatives emerge from these developments.

One, the NIA must initiate an investigation to find the culprits, if those against whom they had pressed their original charges are found to be not guilty. Two, it must be insulated from political pressure to be able to work professionally and independently.

The NIA was constituted by the previous UPA government as a special agency with a mandate to investigate terror across the country, after a series of terror strikes in different parts of the country called for investigation unhindered by state boundaries that impeded normal police agencies. There are two possible scenarios of political influence on the agency.
One, when it investigated the blasts and found assorted activists of rightwing Hindu organisations responsible for organising the attacks and framed charges against them, it was acting under political pressure from the government of the day. This would make the consistent unravelling of the NIA prosecution case after the present NDA government came to power the natural reversal of the previous political bias.

Or, two, the original charges were warranted and the subsequent going slack on the charges is politics. Either of the two scenarios must be true. Neither does the agency any credit. NIA must make amends.

दैनिक भास्कर

Date: 20-04-18

स्वास्थ्य नियामक प्राधिकरण बनाए सरकार

आयुष्मान भारत' से हर स्तर पर स्वास्थ्य रक्षा सेवाओं को पहुंचाना है तो उसे कुशलता से लागू करना होगा

डॉ. नरेश त्रेहान (ख्यात कार्डियोलॉजिस्ट एवं चेयरमैन व एमडी, मेदांता हार्ट इंस्टीट्यूट)

किसी भी आधुनिक कल्याणकारी देश के लिए अपने नागरिकों की सेहत सर्वोपरि होती है। यह विडंबना ही है कि हमारी आबादी का विशाल तबका स्वास्थ्य रक्षा सुविधाओं से वंचित है। हाल में घोषित 'आयुष्मान भारत' योजना का लक्ष्य इसी समस्या पर ध्यान देना है। इसके माध्यम से सरकार 50 करोड़ वंचित नागरिकों तक सरकारी व निजी स्वास्थ्य रक्षा सुविधाएं पहुंचाना चाहती है। प्रति परिवार 5 लाख रुपए का हेल्थ कवर देकर सरकार इसे साकार करना चाहती है। 'आयुष्मान' के मूल सिद्धांतों में से एक है सहकारी संघवाद और राज्यों के लिए लचीलापन। राज्य सरकारों को अमल की पद्धति तय करने की भी छूट है। इसका अच्छा लाभ उठाने के लिए जरूरी है कि सरकार व उद्योग को कवरेज बढ़ाने और गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सुविधाओं तक लोगों की पहुंच बनाने का उद्देश्य सामने रखकर भागीदारी करनी चाहिए।

जैसे भारत में टीबी और दवा प्रतिरोधी टीबी के मामलों का बहुत बड़ा बोझ है। यदि हम इसे 2025 तक खत्म करना चाहते हैं तो टीबी के रोगियों का पता चलने पर और पूरे इलाज के दौरान पोषण की स्थिति का पता लगाते रहना होगा। पोषण के लिए 600 करोड़ रुपए देने का नतीजा बेहतर इलाज और पूरा इलाज लेने की बेहतर दर में होगा। सरकार को यह सुनिश्चित करना होगा कि आवंटित पैसा रोगी के हित में खर्च हो। फिर तृतीयक स्वास्थ्य रक्षा सेवा देने में बुनियादी ढांचे और काबिल मेडिकल पेशवरों की उपलब्धता दोनों स्तरों पर बड़ी चुनौती है। तीन संसदीय क्षेत्रों में एक मेडिकल कॉलेज खोलने की पहल से इसमें बहुत मदद मिलेगी। कई वजहों से स्वास्थ रक्षा लगातार परिवर्तनशील क्षेत्र है। हम जब स्वास्थ्य रक्षा सेवाएं देने के नए तरीकों के बारे में सोच रहे हैं तो टेक्नोलॉजी अनिवार्य है।

भारत में टीबी, मलेरिया, डेंगू, एच1एन1, महामारी बन चुका इन्फ्लूएंजा और रोगों की एंटीबायोटिक रोधी किस्में लगातार सेहत व आर्थिक सुरक्षा के लिए खतरा बनी हुई हैं तो हमें दिल-धमनियों के रोग, डायबिटीज, कैंसर जैसे असंक्रामक रोगों की उभरती चुनौती से भी निपटना है। इसके कारण स्वास्थ्य का बुनियादी ढांचा पहले ही दबाव में है। इलाज के खर्च के कारण हर साल करीब 6 करोड़ लोग गरीबी में धकेल दिए जाते हैं। यदि योजना का अधिकतम फायदा लेना हो तो बजट में घोषित स्वास्थ्य संबंधी विभिन्न कदमों और राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन जैसे कार्यक्रमों को आपस में जोड़ना होगा। यह भी स्पष्टता जरूरी है कि सरकारी स्वास्थ्य सुविधाएं कौन-सी सेवाएं देंगी, कौन-सी अवस्था में रोगी निजी क्षेत्र का लाभ ले सकेंगे और इसके लिए कौन-सा तंत्र उपलब्ध है।

जांच, दवाओं और विभिन्न उपकरणों की सेवाओं हेतु एकसमान कीमतों के लिए सिस्टम बनाने की भी जरूरत है ताकि इस संबंध में पारदर्शिता पक्की की जा सके। अस्पतालों को स्वास्थ्य केंद्रों और समुदायों से जोड़कर केयर सिस्टम का स्थायित्व कायम करने की भी जरूरत है। इस तरह कार्यक्रम की योजना व क्रियान्वयन में समुदायों की भागीदारी अहम है। प्रभावी क्रियान्वयन ही आयुष्मान भारत की कामयाबी की कुंजी है। इसके लिए स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय में स्वतंत्र संस्था या इकाई स्थापित की जा सकती है ताकि राज्यों को नियोजन, समन्वयन और तकनीक के स्तर पर मदद दी जा सके। इसमें क्षमता निर्माण और मानकों व दिशा-निर्देशों का विकास भी शामिल है।

अध्ययनों से पता चलता है कि देश में 65 फीसदी खर्च बाह्य रोगी स्वास्थ्य रक्षा पर ही होता है, जो रोगी को जेब से देना होता है। यदि व्यापक स्वास्थ्य रक्षा सेवा देना लक्ष्य है तो प्रभावी वित्तीय व्यवस्था और प्राथमिक स्वास्थ्य रक्षा सेवा बहुत जरूरी है। 1.50 लाख स्वास्थ्य एवं कल्याण केंद्रों की स्थापना बहुत बड़ी पहल है। टैक्स फायदे या सब्सिडी देकर निजी भागीदारी को प्रोत्साहित किया जा सकता है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य रक्षा योजना (एनएचपीएस) का लाभ लेने वाले हर व्यक्ति को किसी न किसी स्वास्थ्य या कल्याण केंद्र में पंजीयन कराना चाहिए। अनावश्यक उपयोग टालने के लिए लाभ लेने वाले से नाममात्र का भुगतान लेना चाहिए। दवाइयां और जांच सेवाएं रियायती दलों पर या जो देने की स्थिति

में न हो उन्हें नि:शुल्क दी जा सकती है। प्राइमरी केयर फिजिशियन (पीसीपी) वाले ये केंद्र बाह्यरोगी सेवाएं तो देंगे ही, एनएचपीएस के लिए गेटकीपर का काम भी करेंगे। विशेषज्ञों वाले पोली-क्लिनिक और जांच की उच्च सुविधाएं भी स्थापित करनी होगीं ताकि प्राथमिक केंद्रों से भेजे रोगियों को सुविधा दी जा सके। यहां प्राथमिक केंद्रों से भेजे जाने पर ही इलाज हो।

एएचपीएस सदस्य की किसी भी अस्पताल में भर्ती केवल पीसीपी या विशेषज्ञों के परामर्श पर हो अपवाद सिर्फ दुर्घटना जैसी इमरजेंसी केस हों। इस तरह पीसीपी व विशेषज्ञ अस्पताल में अनावश्यक भर्ती और सर्जरी रोकने के लिए जिम्मेदार हों। योजना के लिए तय अस्पतालों को बुनियादी सुविधाओं और गुणवत्ता के आधार पर ग्रेड दी जानी चाहिए और सतत निगरानी रखनी चाहिए। केंद्र सरकार को राष्ट्रीय स्वास्थ्य नियामक प्राधिकरण स्थापित करना चाहिए और राज्य सरकारों पर जोर डालना चाहिए कि वे भी ऐसी संस्थाएं गठित करें। ऐसी सारी संस्थाओं के प्रमुख, राष्ट्रीय स्वास्थ्य नियामक प्राधिकरण के सदस्य होने चाहिए। इससे देशभर के स्वास्थ्य रक्षा सेक्टर में एकरूपता आ जाएगी। तीनों पहल को एकीकृत रूप से अमल में लाने का दूरगामी परिणाम होगा और हमें वाकई बेहतर सेहत वाला भारत दिखाई देगा। इलाज अथवा सर्जिकल प्रक्रियाओं और जांच व दवाइयों के उपयोग को तर्कसंगत बनाने से स्वास्थ्य रक्षा लागत में कमी आएगी। बड़ी आबादी के कारण स्वास्थ्य केंद्रों और सरकारी ढांचे को एकीकृत किए बिना एनएचपीएस लॉन्च करने से वांछित परिणाम नहीं मिलेगा। हमें समझना होगा कि इसके लिए अच्छी प्लानिंग, मजबूत नियमन, सरल व प्रभावी प्रक्रियाएं और टेक्नोलॉजी से सतत निगरानी बहुत जरूरी है। कमजोर क्रियान्वयन से न सिर्फ ऐसी योजनाओं की लागत अत्यधिक बढ़ जाएगी बल्कि भविष्य में हैल्थकेयर सेक्टर को आवंटन में दिक्कत आएगी।

कुल-मिलाकर मैं इस योजना को इनोवेटिव और नई जमीन तोड़ने वाला मानता हूं। यदि इसे कुशलता से लागू किया गया तो यह रूपांतरकारी असर डालेगी। कोई कारण नहीं है कि हम विवेकपूर्ण और कारगर ढंग से इसे सुनिश्चित नहीं कर सकते।

नईदुनिया

Date: 20-04-18

अपने समंदर संभाल ले राष्ट्रमंडल

सी. उदयभास्कर , (लेखक सामरिक मामलों के विशेषज्ञ हैं)

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी राष्ट्रमंडल सरकारों के प्रमुखों की बैठक में हिस्सा लेने के लिए लंदन में हैं। इस शिखर वार्ता को सीएचओजीएम भी कहा जाता है। मोदी पहली बार इसमें शामिल होने जा रहे हैं। 53 देशों के इस समागम में भारतीय प्रधानमंत्री को खासी तवज्जो मिल रही है। अपनी आबादी और आर्थिक बूते की बदौलत भारत राष्ट्रमंडल के दिग्गज देशों में शामिल है जो कुछ समय बाद अमेरिका और चीन के बाद दुनिया में तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन जाएगा। मेजबान ब्रिटेन के साथ कनाडा और ऑस्ट्रेलिया भी इस समूह के दिग्गजों में शामिल हैं। हाल में संपन्न् राष्ट्रमंडल खेलों की पदक तालिका में भी इन चारों देशों का जलवा ही देखने को मिला। वर्ष 2018 में आयोजित हो रहे सीएचओजीएम का विषय है 'एक साझा भविष्य की ओर। उम्मीद की जा रही है कि सम्मेलन में जुटे नेता सामाजिक-आर्थिक विकास, मानव

सुरक्षा और लैंगिक चुनौतियों से जुड़े उन तमाम वैश्विक मुद्दों पर विचार-विमर्श करेंगे, जिनसे दुनिया इस वक्त जूझ रही है। इसमें कोई संदेह नहीं कि दुनिया का भविष्य कई मायनों में अनिश्चित है और परमाणु हथियारों से लेकर ग्लोबल वार्मिंग, विभिन्न् बीमारियों और आतंकवाद से लेकर ऐसी चुनौतियों की अंतहीन सूची है, जिनसे दुनिया के वजूद पर खतरा मंडरा रहा है, लेकिन दुनिया के सामने एक ऐसा खतरा भी दस्तक दे रहा है, जिसका असर लंबे अरसे तक महसूस होगा और यह खतरा है महासागरों में बढ़ता प्रदूषण। इस मुद्दे पर सियासी रूप से उतना ध्यान नहीं दिया जाता, जितना दिया जाना चाहिए। उम्मीद करें कि रिट्रीट के दौरान जरूर इस पर कुछ विमर्श होगा।

रिट्रीट राष्ट्रमंडल का एक प्रमुख आयोजन होता है जिसमें सभी नेता बिना सहयोगियों के ही एक-दूसरे से अनौपचारिक बातचीत में शामिल होते हैं। 20 अप्रैल को होने वाला रिट्रीट इस मुद्दे को उठाने का उचित मंच होना चाहिए। एक डच फाउंडेशन द्वारा मार्च के अंत में जारी तीन वर्षीय अध्ययन के नतीजे चौंकाने वाले हैं। इसमें महासागरों की सफाई से जुड़ी तस्वीर खतरे की घंटी बजाने वाली है। दुनिया भर में समुद्र और महासागर लंबे वक्त से धरती से जमा होने वाले कचरे को खपाने में बर्बाद हो रहे हैं, किंतु बीते कुछ वर्षों में महासागरों की सेहत के लिए प्लास्टिक सबसे बड़े खतरे के रूप में उभरा है।

पहले हमारे पास ऐसी तकनीक नहीं थी जिससे व्यापक स्तर की निगरानी संभव हो सके, लेकिन अब ऐसा किया जा सकता है। समंदर की थाह लेने वाला कोई भी शख्स खासतौर से प्रशांत महासागर से गुजरने वाले लोग कचरे के तैरते हुए द्वीपों के बारे में जरूर बताएंगे। कचरे का यह सैलाब समुद्री धारा और हवाओं के असर से प्रभावित होकर जुड़ता और बिखरता रहता है। इस पर गौर जरूर किया जा रहा है, लेकिन इससे आगाह नहीं किया जा रहा है। हालिया अध्ययन बताते हैं कि इनमें ग्रेट पेसिफिक गारबेज पैच यानी जीपीजीपी नाम के कचरे के सबसे बड़े भंडार का आकार फ्रांस से भी तीन गुना अधिक है। डच अध्ययन के अनुसार जीपीजीपी का आकार 16 लाख वर्ग किलोमीटर के बराबर है जिसमें 80,000 मीट्रिक टन के बराबर कचरा हो सकता है।

महासागर सफाई से जुड़े अध्ययन आगे दर्शाते हैं कि लगभग 80 लाख टन प्लास्टिक कचरा हर साल महासागरों में जा रहा रहा है। एक ब्रिटिश रिपोर्ट ने भी इसकी पुष्टि की है। इसके मुताबिक अगर इस पर विराम नहीं लगाया गया तो अब से सात साल बाद 2025 में यह तीन गुना तक बढ़ सकता है। वैश्विक राजनीतिक ढांचे को इस बड़े खतरे पर जरूर विचार करना चाहिए, क्योंकि महासागरों में जमा होता प्लास्टिक कचरा माइक्रोप्लास्टिक के रूप में बदल जाता है, जिससे वह सामुद्रिक जीवन का हिस्सा बनकर प्लास्टिक अवशेष के रूप में मानवीय खाद्य श्रंखला का हिस्सा बन जाता है। ऐसा अनुमान है कि इसका एक मामूली हिस्सा पहले ही मानव खाद्य एवं जल श्रंखला का हिस्सा भी बन चुका है, जिसके वैश्विक स्वास्थ्य पर पड़ने वाले दीर्घावधिक प्रभावों का अध्ययन किए जाने की भी जरूरत है। महासागरों में प्लास्टिक के इस मौजूदा खतरे को जनसंहारक हथियारों की संज्ञा भी दी जा सकती है, जो धीमी रफ्तार से अपना असर दिखा रहा है।

इसरायली समुद्र विज्ञानी एवं शिक्षक डॉ. बेल्ला गालिल ने 1995 में प्रकाशित 'मरीन पॉल्यूशन बुलेटिन अंक 30 के माध्यम से पहली बार दुनिया को इस समस्या से रूबरू कराया था। उन्होंने भूमध्यसागर में प्लास्टिक कचरे की समस्या को उठाया था। उनका कहना है कि प्लास्टिक कचरे का दायरा कई कारकों पर निर्भर करता है। मसलन समुद्री धाराओं और प्रवाह प्रारूप, शहरीकृत तटीय आबादी का घनत्व और आमदनी का स्तर इसमें अहम भूमिका निभाता है। पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमेरिका में यह 100 किलोग्राम प्रतिवर्ष से लेकर विकासशील देशों में 20 किलोग्राम सालाना तक हो सकता है। हालांकि केवल प्लास्टिक ही नहीं है, जो महासागरों की सेहत और उनमें

पोषित होने वाले जटिल सागरीय जीवन को लील रहा है। दुनिया भर के सागर और महासागर मानव द्वारा उत्सर्जित कुल कार्बन उत्सर्जन के एक चौथाई हिस्से को अवशोषित करने वाले प्राकृतिक माध्यम हैं। दीर्घावधि में इसका दुष्प्रभाव पड़ना तय है। जहां ग्लोबल वार्मिंग पहले से ही समुद्री जल का तापमान बढ़ाने के साथ ही सागरीय एवं महासागरीय जल के रासायनिक स्वरूप को बदलने के साथ उसकी अम्लीयता बढ़ा रही है। इससे तटीय प्रवाल भित्ति को नुकसान हो रहा है, जिसका खामियाजा बेहद नाजुक समुद्री खाद्य श्रृंखला को भुगतना पड़ रहा है।

तमाम वैश्विक अध्ययन महासागरों की सेहत को लेकर निराशाजनक निष्कर्ष पेश करते हैं, लेकिन कुछ ठोस मानवीय कदम कुछ बेहतरी की आस जगा सकते हैं। अपनी बात को बेहतर ढंग से रखने में महारत रखने वाले प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी अन्य नेताओं के समक्ष वर्सोवा बीच के कायाकल्प का किस्सा सामने रखें। मुंबई में वर्सोवा बीच पिछले कई वर्षों से गंदगी की मिसाल बन गया था जहां स्थानीय स्तर पर कचरा निपटान की पर्याप्त व्यवस्था नहीं थी। दो साल पहले कुछ नागरिकों के संयुक्त प्रयासों से शुरू किए गए अभियान और हजारों मुंबईकरों के योगदान से वर्सोवा बीच की कायापलट हो गई। इस साल 21 मार्च को समुद्र तट पर कछुओं की चहलकदमी से इस कवायद का फल भी मिलता दिखा। स्थानीय लोगों ने कहा कि तकरीबन 15 वर्षों बाद उन्होंने कछुओं के अंडों से जुड़ा यह वाकया देखा। हालांकि केवल यही मामला समुद्र की सफाई का पैमाना नहीं हो सकता, लेकिन यह इस बात की मिसाल जरूर है कि मानवीय दखल कुछ रंग जरूर दिखा सकता है।

राष्ट्रमंडल देशों में से अधिकांश समुद्र तटों पर ही बसे हैं। ऐसे में महासागरों की सेहत उनके लिए बहुत मायने रखती है। प्रधानमंत्री मोदी ने भी इसी वर्ष मार्च में हिंद महासागर में सुरक्षा और वृद्धि के लिए अपने सागर दृष्टिकोण को पेश किया है। अब समय आ गया है कि इस नजरिये को राष्ट्रमंडल के मंच पर विस्तार दिया जाए। महासागर मानवीय अस्तित्व और उसके भविष्य का अहम हिस्सा हैं और उम्मीद की जानी चाहिए कि लंदन के इस सम्मेलन में इस अहम मुद्दे पर चर्चा की जाए, जिसकी अक्सर अनदेखी हो जाती है।

जागरण

Date: 19-04-18

फिर शुरू हो सामाजिक-धार्मिक सुधार

उदय प्रकाश अरोड़ा (जेएनयू में ग्रीक चेयर प्रोफेसर रहे हैं)

चौदहवीं शताब्दी में मध्वाचार्य ने सर्वदर्शन संग्रह नामक एक पुस्तक में चार्वाक से प्रारंभ कर वेदांत तक हिंदू धर्म में सम्मिलित 16 विभिन्न दर्शनों की व्याख्या की थी। प्रत्येक अध्याय में उन्होंने यह बताया था कि कैसे एक विचार दूसरे से बिल्कुल भिन्न होते हुए भी स्वयं को हिंदू धर्म का ही अंग मानता है।हिंदू धर्म के मूल तत्व उस वैदिक संस्कृति की

देन हैं, जिनका जन्म विभिन्न धाराओं से मिलकर सिंधु-सरस्वती नदी के तट पर हुआ। जिस वर्ण व्यवस्था को इस संस्कृति ने जन्म दिया वह व्यक्ति के कर्म पर आधारित एक प्रकार का सामाजिक विभाजन था। व्यक्ति को अपनी रुचि के अनुसार काम करने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। कर्म या पेशे के मुताबिक ही वर्ण तय किया जाता था। न कोई ऊंचा था न कोई नीचा। स्त्रियों को भी परवर्ती युग की अपेक्षा अधिक आजादी थी। धीरे-धीरे सामाजिक संगठन जटिल होने लगा। वर्णों का स्थान जाति ने ले लिया। ऊंच-नीच का भेद बेतहाशा बढ़ गया। व्यक्ति की श्रेणी उसके कर्म से नहीं, बल्कि जन्म से तय की जाने लगी।

मनुष्य केवल शूद्र ही नहीं, अन्त्यज और अस्पृश्य माना जाने लगा। कर्मकांडों केआडंबर के कारण समाज में पुरोहितों का वर्चस्व बढ़ने लगा। ऐसी स्थिति में हिंदू समाज को आवश्यकता थी सामाजिक-धार्मिक परिवर्तन की। 600-500 ईसा पूर्व के लगभग भारत में ऐसे अनेक आंदोलनों ने जन्म लिया जिन्होंने जाति प्रथा और पुरोहितवाद के खिलाफ आवाज उठाकर सामाजिक एवं धार्मिक सुधारों को आगे बढ़ाया। इन आंदोलनों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण माने हैं बुद्ध और महावीर के नेतृत्व में प्रारंभ बौद्ध और जैन धार्मिक क्रांति। दोनों ने जातिवाद, यज्ञवाद, पशुबलि हिंसा और पुरोहितवाद का विरोध किया। दोनों ने अहिंसा का मार्ग अपनाया। दोनों ने अहिंसा, तप त्याग और नैतिक नियमों पर बल दिया। अपने उपदेशों के प्रसार के लिए उन्होंने जनता की प्रचलित भाषा पाली और प्राकृत को अपनाया, संस्कृत को नहीं। दोनों का संघर्ष कुप्रथाओं के विरुद्ध था।

कोई नया धर्म प्रारंभ करने की उनकी कोई मंशा नहीं थी। वे धर्मों में सुधार लाना चाहते थे, धर्म से अलग होना नहीं। दलाई लामा बौद्ध धर्म के बारे में प्राय: कहते हैं, 'यह भारत की अमूल्य निधि है जिसे हम आज आपके पास लाए हैं। कभी आपके आचार्यों ने तिब्बत को इसे उपहार स्वरूप प्रदान किया था। हमने एक हजार वर्षों तक उसे संभालकर रखा। जब यह भारत में विलुप्त होने लगा तब हम उसे पुन: जीवन प्रदान करने के लिए आपको दे रहे हैं।'

जो काम महात्मा बुद्ध और वर्धमान महावीर ने किया वही मध्ययुग में भक्ति आंदोलन ने किया। उस समय कबीरदास क्रांतिकारी संत के रूप में सामने आए। उन्हें इसका श्रेय जाता है कि हिंदू धर्म का जो नेतृत्व ब्राह्मणों के हाथ में था उसे उन्होंने अन्य वर्ग तक पहुंचाया। कबीर की परंपरा में जो संत सुधारक हुए उनमें नानक, रैदास, सुंदरदास, दादूदयाल, मलूकदास और धरणीदास के नाम विशेष रूप से जाने जाते हैं। इनमें कोई भी संत ब्राह्मण कुल में नहीं पैदा हुआ। इसी समय सिख धर्म ने जन्म लिया। सामान्य हिंदू ने सिखों को कभी भी अपने धर्म से अलग नहीं माना। पश्चिमोत्तर भारत की ओर से हुए बाहरी आक्रमणों के दौरार्न हिंदुओं ने सदैव उन्हें हिंदू धर्म के रक्षक के रूप में देखा।

आधुनिक युग में पश्चिमी विचारकों से प्रभावित जिन हिंदू सुधारकों का उदय हुआ उनका उद्देश्य हिंदू धर्म का मूल्यांकन सामाजिकता की कसौटी पर करना था। राममोहन राय, केशवचंद्र सेन, दयानंद, रामकृष्ण, विवेकानंद आदि के नेतृत्व में जिस हिंदू नवोत्थान का विकास हुआ उसने जाति प्रथा के विरोध, विधवा विवाह के समर्थन, स्त्री शिक्षा के प्रसार और बाल विवाह के विरोध में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। यह राममोहन राय के ही प्रयत्नों का परिणाम था कि 1829 में लॉर्ड विलियम बेंटिक ने सती प्रथा को गैर कानूनी घोषित करके उसके विरुद्ध कड़ा कानून बनाया।

19वीं सदी के नवोत्थान ने हिंदू धर्म में तर्क और विवेक की प्रधानता, संसार की सत्यता और मनुष्य के विश्वास को बढ़ाया। दुर्भाग्य की बात है कि 19वीं सदी में समाज सुधारकों ने सामाजिक और धार्मिक सुधार के लिए जो आंदोलन छेड़े वे सदी के अंत तक स्थगित से हो गए और 20वीं सदी के प्रारंभ से यह सोच पैदा होने लगी कि पहले राजनीतिक

स्वतंत्रता हासिल करना जरूरी है, धार्मिक और सामाजिक सुधारों की लड़ाई आजादी के बाद भी प्रारंभ की जा सकती है। दुष्परिणाम सामने है। राजनीतिक स्वतंत्रता तो हमने पा ली, किंतु सामाजिक एकीकरण और धार्मिक सद्भाव का काम थमा रहा।

परिणाम यह है कि जाति प्रथा, सांप्रदायिकता और अंधविश्वास देश के विकास को रोके हुए है। और भी अजीब बात यह है कि जो संगठन हिंदू समाज को मजबूत बनाने के लिए बने थे वे आज हिंदू समाज से अलग होना चाहते हैं। हिंदुत्व की रक्षा करने में जितनी मुसीबतें आर्य समाज ने झेलीं उतनी और किसी संस्था ने नहीं। एक तरह से उत्तर भारत में हिंदुओं को प्रगतिशील बनाने का श्रेय आर्य समाज को जाता है। एक समय यही आर्य समाज संस्था यह प्रमाणित करने में जुटी कि वह हिंदुओं से अलग एक अल्पसंख्यक धर्म है। दिल्ली और कलकत्ता के उच्च न्यायालयों से आर्य समाज ने अल्पसंख्यक दर्जा मांगा। उसका आवेदन खारिज हुआ और इस तरह न्यायपालिका ने हिंदू समाज को बचा लिया।

विवेकानंद ने अपनी वाणी और करनी से यह अभिमान जगाया कि हम अत्यंत प्राचीन सभ्यता के उत्तराधिकारी हैं और हमारा धर्म ऐसा है जो विज्ञान की कसौटी पर खरा उतरता है, लेकिन उनके द्वारा स्थापित रामकृष्ण मिशन ने 1980 में यह दलील दी कि वह हिंदू नहीं है। 1995 में सुप्रीम कोर्ट ने फैसला दिया कि रामकृष्ण मिशन हिंदू धर्म का ही एक अंग है। इसके बाद जनवरी 2014 में संप्रग सरकार ने जैन समाज को अल्पसंख्यक दर्जा दे दिया। हजारों वर्ष तक खुद को हिंदू समाज का हिस्सा मानने वाले अकस्मात उससे अलग हो गए।

अब शिव पूजक लिंगायत समाज हिंदू धर्म से अलग होने को तत्पर है, जबकि लिंगायत मत के संस्थापक विवेकानंद और दयानंद सरीखे समाज सुधारक थे। उन्होंने जाति प्रथा, मूर्ति पूजा और बहुदेववाद का विरोध किया। रामकृष्ण मिशन, आर्यसमाज, जैन और लिंगायत समाज की संस्थाओं के अधीन अनेक मंदिर, अस्पताल, शिक्षा संस्थाएं, धर्मशालाएं है। लगता है कि ये नहीं चाहते कि उनकी इन संस्थाओं पर सरकार का हस्तक्षेप हो। जो भी हो, यह अल्पसंख्यकवाद वसुधैव कुटुंबकम की अवधारणा के विपरीत है। हिंदू समाज को फिर से आवश्यकता है किसी मध्वाचार्य, कबीर, दयानंद या विवेकानंद की और सामाजिक-धार्मिक सुधार की।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 19-04-18

अमूर्तन से अनंत में विलीन

रवींद्र कुमार दास

भारतीय आधुनिक कला के आधार स्तंभ और अमूर्त कला के वरिष्ठम कलाकारों में शुमार राम कुमार वर्मा का निधन संपूर्ण भारतीय कला जगत के लिए दुखद खबर है। हालांकि कुछ दिनों से वे अस्वस्थ थे। उनका अस्पताल में इलाज चल रहा था। राम कुमार कला एवं साहित्य, दोनों विधाओं में समान दखल रखने वाले विलक्षण प्रतिभा थे। अपने छोटे भाई चर्चित हिन्दी साहित्यकार निर्मल वर्मा की तरह इनकी भी कई रचनाएं छपी हैं, जिनमें दो उपन्यास और कहानियां भी शामिल हैं। लेकिन शुरूआती दौर में साहित्य लेखन के बाद सात दशकों से वे लगातार कला सृजन को अपना जीवन

समर्पित कर चुके थे। उनका जन्म 1924 में शिमला के एक बड़े परिवार में हुआ था। पिता ब्रिटिश सरकार के कर्मचारी थे। अपने कला प्रेम के कारण इन्होंने सेंट स्टीफेंस कॉलेज से अर्थशास्त्र की पढाई के बाद भी 1945 में कला गुरू शैलोज मुखर्जी के संरक्षण में शारदा उकील स्कूल ऑफ आर्ट, दिल्ली में सायंकालीन कक्षा में नामांकन करवाया। कला के प्रति उनकी दीवानगी बढ़ती गई और 1948 में उन्होंने बैंक की नौकरी भी छोड़ दी और कला की पढ़ाई के लिए पेरिस चले गए जहां उनकी मुलाकात रजा से हुई।

शुरुआत में कुछ आकृतिमूलक कलाकृतियां बनाई। मगर अपने अमूर्त दृश्य चितण्रके लिए ही दुनिया भर में चर्चित हुए। 1960 में बनारस प्रवास के बाद उन्होंने फिर कभी आकृतिमूलक चित्र नहीं बनाए। मगर अपने दृश्य चितण्रमें मूर्त से अमूर्त और फिर अमूर्त से मूर्त की ओर इनकी कलाकृतियां कई बार वापस लौटीं। राम कुमार के अमूर्त चित्रों को देखे गए दृश्यों में नवीनता लाने का एक प्रयास कहा जा सकता है । इसीलिए बिना किसी स्पष्ट आकृति के भी उन्हें पहचाना जा सकता था। उनके चित्रों में आकृतियां जरूर विलीन हो गई थीं। मगर रंग वास्तविक दृश्यों सरीखे ही हुआ करते थे। सफेद और ग्रे रंगों की प्रमुखता की वजह से चटकीले रंगों की हलकी-सी आभा उनके चित्रों में दिखती है। नाइफ से चित्र बनाते थे पर उनकी कलाकृतियों में आकृतियों के अमूर्तन के वावजूद रंगों में प्राकृतिक रु झान हर कलाप्रेमी को अपनी ओर आकर्षित करता है। उनके अमूर्त दृश्य चित्रों में भी बनारस और पहाड़ के दृश्य स्पष्ट दृष्टिगोचर होते थे।

अन्य कलाकारों की अपेक्षा उन्होंने बनारस को अलग ढंग से चित्रित किया। उनका बनारस धर्मभीरु नहीं है, और न ही परंपराओं को दशर्ता है। अधिकतर तैल माध्यम में काम करने वाले राम कुमार ने हर कलाकृति को मास्टर पीस मानकर पूरी तन्मयता से काम किया। उन्होंने कभी भी छोटा-सा भी कमजोर काम नहीं किया। यही वजह है की उनकी कलाकृतियां करोड़ों में बिकीं। कला बाजार के लिए वह बड़ा नाम हैं, क्योंकि उनकी एक कलाकृति वेगा बॉन्ड क्रिस्टी की नीलामी में सात करोड़ में बिकी थी। देश के चर्चित कलाकारों में मकबूल फिदा हुसैन, सैयद हैदर रजा, फ्रांसिस न्यूटन सूजा, गायतोंडे और तैयब मेहता सभी इनके अंतरंग मित्रों में शामिल थे।कई चर्चित पुरस्कार और सम्मानों से उन्हें नवाजा जा चुका था, जिनमें 1970 में न्यूयार्क की जॉन डी रॉकफेलर फेलोशिप, 1986 में मध्य प्रदेश सरकार द्वारा दिया गया कालिदास सम्मान, 1972 में भारत सरकार द्वारा पद्मश्री, 2010 में पद्मभूषण और 2011 में ललित कला अकादमी द्वारा फेलोशिप प्रमुख हैं। वह दिल्ली शिल्पी चक्र और प्रोग्रेसिव आर्ट ग्रुप के प्रमुख सदस्य थे। उनकी अधिकतर कलाकृतियों में उनके प्रिय शहर बनारस और शिमला की झलक मिलती है। बहुत कम बोलने वाले और शांत स्वभाव के राम कुमार का व्यक्तित्व और जीवन सरल था, जबकि उनके मित्र फैशनेबल और शोमैन के रूप में चर्चित थे।

पेरिस और इंग्लैंड प्रवास के बाद वह दिल्ली स्थित अपने घर के बेसमेंट में बने स्टूडियो में ही अपने अंतिम समय तक लगातार सक्रिय रहे। उनके एक बेटे हैं, उत्पल वर्मा जो ऑस्ट्रेलिया में रहते हैं। दिल्ली की भारती आर्टस्टि कालोनी स्थित निवास में मुझे भी उनसे मिलने का सौभाग्य मिला था। अपनी बातचीत में एक महत्वपूर्ण बात उन्होंन कही कि भारत में अब कला बाजार का विकेंद्रीकरण होना चाहिए। महानगरों में स्थित आर्ट गैलरी को छोटे शहरों में भी कला प्रदशर्नी आयोजित करनी चाहिए और काम खरीदना चाहिए। शांत स्वभाव और अंतर्मुखी व्यक्तित्व का प्रभाव उनकी कलाकृतियों में भी दिखता था। ऐसे मूर्धन्य कलाकार के निधन पर हम अपनी भावपूर्ण श्रद्धांजलि अपिर्त करते हैं।

जनसत्ता

Date: 19-04-18

फिर संकट

संपादकीय

नोटबंदी की मार से लोग अभी पूरी तरह उबर भी नहीं पाए हैं कि एक बार फिर नकदी संकट की खबरों ने नींद उड़ा दी है। देश के ग्यारह राज्यों से खबर है कि लोग एटीएम से खाली हाथ लौट रहे हैं। ज्यादातर बैंकों के एटीएम खाली पड़े हैं। जहां इक्का-दुक्का एटीएम चल भी रहे हैं, वहां लंबी कतारें नोटबंदी के दिनों की याद ताजा करा रही हैं। दिल्ली और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में चालीस फीसद एटीएम खाली होने की खबरें हैं और हालत यह है कि पिछले एक हफ्ते से किसी भी बैंक में नकदी नहीं आई है। इस तरह अचानक आया संकट सरकार और बैंकिंग प्रणाली दोनों पर सवाल खड़े करता है। क्या सरकार और केंद्रीय बैंक को जरा भी भनक नहीं लगी कि नकदी की कमी होने जा रही है? अगर ऐसा है तो यह हमारी बैंकिंग प्रणाली की दुर्दशा को बताता है। हालांकि सरकार और रिजर्व बैंक ने दावा किया है कि देश में पर्याप्त नकदी है और यह संकट अस्थायी है। पर जिस तरह से सारा संकट आया, उसको देखते हुए यह बात आसानी से गले नहीं उतरती।

आखिर ऐसा क्या हुआ कि अचानक नकदी संकट आ गया? देश में इस वक्त अठारह लाख करोड़ रुपए की नकदी चलन में है। पिछले एक पखवाड़े में सामान्य से तीन गुना ज्यादा नकदी निकाल ली गई। वित्त मंत्रालय और रिजर्व बैंक समस्या की जड़ इसी में देख रहे हैं। देश में हर महीने बीस हजार करोड़ रुपए नकदी की खपत होती है, जबकि पिछले पंद्रह दिनों के भीतर पैंतालीस हजार करोड़ रुपए बाहर आ गए। कई राज्यों में तो दो हजार रुपए के नोट ही गायब हैं। क्या यह रकम जमाखोरों के हाथ में पहुंच गई है? सबसे ज्यादा संकट और अफवाहें दो हजार रुपए के नोट को लेकर हैं। पिछले साल मई के बाद रिजर्व बैंक ने दो हजार का नोट छापना बंद कर दिया था। देश की कुल मुद्रा चलन में पचास फीसद हिस्सेदारी दो हजार के नोट की है। इस वक्त बाजार में दो हजार रुपए मूल्य के मात्र दस फीसद नोट चलन में हैं। जाहिर है, दो हजार रुपए के जितने नोट बैंकों से निकले, उसका बड़ा हिस्सा जमाखोरी का शिकार हो गया। सरकार ने भी इस बात को माना है। नोटों की जमाखोरी के पीछे एक बड़ा कारण लोगों में नोटबंदी का बैठा खौफ है। दूसरा बड़ा कारण यह है कि लोग एफआरडीआइ (फाइनेंशियल रेग्युलेटरी एंड डिपॉजिट इंश्योरेंस) विधेयक को लेकर डरे हुए हैं। लोगों को लग रहा है कि अगर ऐसा कानून बन गया तो बैंकों में उनकी जमा रकम डूब सकती है। इसलिए पिछले कुछ महीनों में दो हजार के नोटों की जमाखोरी तेजी से बढ़ी।

मौजूदा नकदी संकट के लिए रिजर्व बैंक की कार्यप्रणाली काफी हद तक जिम्मेदार है। करेंसी चेस्ट में नोटों की सप्लाई घट कर चालीस फीसद रह गई है। इसीलिए करेंसी चेस्ट बैंकों को भी उनकी मांग के अनुरूप पैसा नहीं दे पा रहे। अर्द्धशहरी और ग्रामीण इलाकों में बैंकों को उनकी जरूरत के हिसाब से नकदी नहीं पहुंचाई जा रही। पचास, सौ और दो सौ रुपए मूल्य के नोट पर्याप्त नहीं हैं। जबकि सबसे ज्यादा जरूरत इन छोटे मूल्य के नोटों की पड़ती है। इससे साफ है कि रिजर्व बैंक नकदी सप्लाई नहीं कर पा रहा। इसके पीछे भले तकनीकी या नीतिगत वजहें हों, लेकिन संकट आम जनता को झेलना पड़ रहा है।

Live हिन्दुस्तान

Date: 19-04-18

खतरे में सुंदरवन

संपादकीय

बंगाल की खाड़ी के तटीय क्षेत्र का विशाल, खूबसूरत और दुनिया के प्राकृतिक चमत्कारों में से एक सुंदरवन खतरे में है, लेकिन इसकी अनदेखी हो रही है। चंद रोज पहले इसे एक और आपदा का सामना करना पड़ा, जब पासुर नदी के रास्ते 775 टन कोयला लेकर जा रहा जहाज नदी में डूब गया। बीते तीन वर्षों में यह ऐसा चौथा बड़ा हादसा है, जब कोयले से लदा कार्गो जंगल के बीच डूबा है। इतनी भारी मात्रा में बार-बार कोयला डूबने से पानी में होने वाली रासायनिक प्रतिक्रिया समूचे वन क्षेत्र के लिए खतरा बन गई है। विशेषज्ञ भी इसके कारण पानी में बढ़ती अम्लता को वनों के लिए विनाशक मान रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों में सुंदरवन और आसपास के इलाके में कई तेल टैंकर भी डूबे, जो पारिस्थितिक विविधता के लिए बहुत नुकसानदेह है। लगता है, हमने इन घटनाओं से कोई सबक नहीं लिया और किसी बडे नतीजे तक यूं ही सोते रहेंगे। चिंता की बात है कि इन खतरों को तो नहीं ही समझा गया, अब विशेषज्ञों की तमाम चेतावनियां दरकिनार करते हुए सरकार ने सुंदरवन के दस किलोमीटर दायरे में 150 उद्योगों को अनुमति दे दी है। कल्पना ही की जा सकती है कि इतने उद्योग लगने के बाद इस जलमार्ग की हालत क्या होगी और तब खतरे का स्तर क्या होगा? पिछली घटनाएं गवाह हैं कि इलाके में जहाज संचालन में कैसी-कैसी लापरवाहियां हो रही हैं, और उद्योगों के कारण इनकी संख्या कई गुना बढ़ जाने पर कितने भयावह नतीजे सामने आएंगे। यह सब करने वाले शायद समझ नहीं रहे कि वे पहले से ही तमाम खतरों से जूझ रहे सुंदरवन और इलाके की लुप्तप्राय जैव विविधता को किस खतरे में धकेल रहे हैं? सरकार को तो घटनाओं से सबक लेकर ऐसी नीति बनानी थी कि खतरा नियंत्रित कर इलाके को बचाने का इंतजाम होता। उसे इलाके में उद्योगों को मिली अनुमति पर पुनर्विचार कर उन्हें कहीं और ले जाने पर सोचना होगा। नहीं भूलना चाहिए कि सुंदरवन और मैंग्रोव के प्राकृतिक जंगल तमाम तरह की प्राकृतिक आपदाओं के मामले में हमारी रक्षा की पहली पंक्ति हैं।

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date: 19-04-18

Pursuing Basavanna

Battle for legacy of Karnataka's 12th century reformer has little to do with his egalitarian vision

Editorial

Despite his packed schedule in London, Prime Minister Narendra Modi made it a point on Wednesday to garland the Basava statute on the Thames. Earlier in the day, he had tweeted: "On his Jayanti, I bow to Bhagwan Basaveswara. He has a special place in our history and culture. His emphasis on social harmony, brotherhood, unity and compassion always inspires us." Congress President Rahul Gandhi too tweeted

his tribute to Basavanna on his birthday. In Karnataka, where the BJP and the Congress are locked in a fierce contest to claim the legacy of the 12th century social reformer, party leaders ostentatiously observed Basava Jayanti. With less than a month left for polling, politicians of all hues are chasing Basava, who propagated a social vision that subsumed divisive identities like caste and religion and favoured harmony and brotherhood, in a bid to win over his followers, the Lingayats, nearly 17 per cent of the electorate. In the process, Basava has been transformed into a polarising figure who now holds the key to the election.

The centering of Basaveswara in the discourse has more to do with the churn in the state's polity than any effort on the part of politicians to follow his anti-caste, egalitarian vision. The Lingayat community dominated Karnataka politics during the decades immediately following Independence with leaders like S Nijalingappa and B D Jatti heading the state government. The split in the Congress in the 1960s and the rise of Devaraj Urs in Indira Gandhi's Congress led to a reconfiguring of social alliances causing the decline of the Lingayats in state politics. The community recovered its preeminence with the advent of the BJP and the rise of BS Yeddyurappa in the party leadership. The Congress under Siddaramaiah is now trying to counter the BJP's strategy of building a consolidated Hindu vote block by building a political alliance of Dalits, OBCs and minorities. It has also tried to wean away a section of the Lingayat community by supporting its demand for the status of a religious minority, a claim contested by the Sangh Parivar. Both the Congress and the BJP are now wooing the community elders, particularly influential math heads, to press their respective claims.

The reduction of Basava to a mere communitarian icon is a travesty and a diminishing of the legacy of the saint-philosopher. It has also skewed the campaign, leaving little time for political parties to debate more pressing concerns, be it farm distress, the functioning of welfare schemes or jobs.